दिनेश पटेल
समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर के पश्चात् करीब 20 वर्षों से मध्य प्रदेश के स्वयंसेवी संगठन, एकलव्य में कार्यरत। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में चित्र और लेख प्रकाशित।

कला शिक्षा स्कूली पाठ्यचर्या का अनिवार्य हिस्सा रही है लेकिन स्कूलों में इस विषय के साथ होने वाला व्यवहार इसे केन्द्रीय विषय नहीं मानता। परिणामतः कला के जरिए विकसित होने वाली क्षमताएं भी विकसित नहीं हो पातीं। यह लेख बच्चों के साथ कला शिक्षण के अनुभव एवं इसके जरिए आने वाले बदलावों की बानगी प्रस्तुत करता है।

मनुष्य के बचे रहने के लिए जरूरी है कला

सीखना दरअसल एक तरह की रचनात्मक प्रक्रिया है। बच्चों के सीखने की इस प्रक्रिया में अगर हम खुद को भी शामिल कर पाएं तो यह सीखना वास्तव में काफी रोचक और दिलचस्प बन जाता है। बच्चों के साथ की जाने वाली रचनात्मक गतिविधियां इस अर्थ में कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं कि वे बच्चों में विभिन्न प्रकार के कौशलों का विकास करती हैं। इससे बच्चों को खुले दिमाग से और अलग-अलग तरह से सोचने में मदद मिलती है और बच्चे कुछ न कुछ नया गढ़ने की प्रक्रिया की तरफ बढ़ते हैं। वे इस रचनात्मक प्रक्रिया के माध्यम से सपने बुनना भी सीखते हैं। और इस प्रक्रिया से जो आत्म-विश्वास हासिल होता है उससे उनमें जिन्दगी के तमाम सवालों से टकराने का माद्दा पैदा होता है। यह आत्म-विश्वास उन्हें खुद को पहले से अधिक बेहतर और मजबूत होने के अवसर उपलब्ध कराता है। तब ये बच्चे न सिर्फ अपने काम को बेहतर ढंग से करने लगते हैं बल्कि वे अपने अंदर की ऊर्जा का सकारात्मक इस्तेमाल करना भी सीख लेते हैं।

मैं यहां बच्चों की रचनात्मकता से जुड़े कुछ ऐसे अनुभवों को लेकर चर्चा करना चाहूंगा, जो बच्चों के बेहतर सीखने की प्रक्रिया से जुड़ने की तरफ इशारा करते हैं। पहला अनुभव मध्य प्रदेश की संस्था एकलव्य द्वारा संचालित किए जा रहे पुस्तकालय के संदर्भ में है एवं दूसरा हाल ही में 6 जिलों के तकरीबन पचास सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में शुरू किए गए ग्रामीण पुस्तकालय कार्यक्रम का। इसमें बच्चे किताबों से की जाने वाली तमाम गतिविधियों के साथ-साथ नियमित रूप से चित्रकारी भी करते हैं। यहां मैं अपनी बात बच्चों द्वारा की जाने वाली चित्रकारी को आधार बनाकर करूंगा। पुस्तकालय के इन अनुभवों में हमने देखा कि बच्चे अपने चित्रों एवं रचनात्मक लेखन के माध्यम से जिस तरह स्वतंत्र अभिव्यक्ति दर्ज करते हैं वह वास्तव में अद्भुत और सृजनात्मकता से भरपूर होती है। मैं इस बात को लेकर हैरान हूं कि बगैर किसी औपचारिक-अनौपचारिक प्रशिक्षण के ये बच्चे इतनी अद्भुत और सृजनात्मक गतिविधियां रचते

लेखक संपर्क
8, राम रहीम नगर, राधागंज,
देवास-455001 (मध्य प्रदेश)

हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। यदि किसी काम की शुरुआत के लिए थोड़ा संकेत उन्हें दे दिया जाए कि उन्हें अपने घर व आसपास जो भी चीजें दिखाई पड़ती हैं; उनमें से जो भी उन्हें अच्छी और आसान लगे उसे वे बना सकते हैं। उन चीजों के अलावा यदि उन्हें कुछ नया बनाने के लिए प्रेरित किया जाए जिन्हें वे अभी तक अपने चित्रकारी के कालांश में बनाते रहे हैं यानी कि बजाय किसी तरह के परंपरागत और गलत ढंग से बनाए गए पहाड़ व घर के चित्रों के, तब वे कुछ अलग कल्पना करने और चित्र बनाने लगते हैं।

छटे दर्जे के एक बच्चे द्वारा बनाए गए चित्र का अगर मैं उदाहरण पेश करूं जिसने साधारण-सा दिखने वाला एक घर बनाया था, जो वास्तव में ठीक से घर भी नहीं बना था लेकिन उसने उसे बनाया और मकान के ही परिसर में उसने दो छोटे-छोटे अजीब से चित्र बनाए। जो देखने में लग ही नहीं रहे थे कि ये भी कोई चित्र हो सकते हैं। मैंने उस चित्र को देखा और बच्चे से पूछा कि इसमें तुमने क्या बनाया है ? उसने कहा, ''सर म्हने घर बणायो है और एक आदमी ने एक बइरा...''। मैंने कहा, ''तूमने जब इसे बनाना शुरू किया था तब कुछ सोचा था ? मेरा मतलब, क्या तुम्हारे दिमाग में ऐसा ख्याल आया कि मैं ये चित्र बनाऊंगा ?'' बच्चे ने कहा, ''हां सर''। मैंने फिर जोड़ा, ''अच्छा, तो जो कुछ तुमने बनाया है उसी के बारे में एक-दो लाइन लिख दो कि तुमने क्या-क्या बनाया है और किस कारण से बनाया है।'' इसके बाद बच्चा चला गया और थोड़ी देर बाद कुछ लिखकर लाया। उसके लिखे को मैंने उस समय तो अपने बैग में संभालकर रख लिया। क्योंकि एक तो समय की कमी और दूसरे बहुत सारे बच्चों ने भी कुछ न कुछ लिखकर दिया था। उसे समेटने में हमने सब कुछ संभालकर रख लिया।

कुछ दिन बाद जब मुझे कुछ चित्र अपनी हस्तलिखित पत्रिका के लिए चयन करते समय निकालने थे तब पुनः वही चित्र मेरे हाथ लगा। मैंने पहली बार जब उसे सरसरी नजर से देखा तो कुछ खास समझ नहीं आया लेकिन जब मैंने उसे पीछे पलटकर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। बच्चे ने जो लिखा वह इस तरह था- ''मैंने एक घर बनाया है। उस घर में एक परिवार रहता है। वहां एक कुत्ता भी है। एक आदमी है और एक औरत। आदमी कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहा है और काटकर उसकी औरत को दे रहा है।'' मैंने तुरंत उस चित्र को फिर से देखा। इस बार मैंने उसे गौर से देखा कि क्या वास्तव में जो लिखा है वही चित्र में दर्शाया है या कुछ और है। वास्तव में उस चित्र में वह सब मौजूद था और बिलकुल वैसा ही दर्शाने की पूरी कोशिश भी बच्चे ने की थी। मैंने सोचा बच्चे कितनी बारीकी से चीजों को देखते हैं। एक बारगी तो मुझे लगा भी कि सचमुच हम बड़े भी इतनी बारीकी से चीजों के बारे में क्या कभी सोच पाते हैं ? बच्चे ने चित्र में एक व्यक्ति को लकड़ी काटकर अपनी पत्नी को देते हुए बताया था। चूंकि चित्र काफी छोटा और अस्पष्ट-सा जान पड़ रहा था इसलिए समझ ही नहीं आया कि बच्चे ने चित्र में क्या दर्शाने की कोशिश की है। बाद में मैंने उस चित्र को अपने अन्य साथियों को भी दिखाया।

बच्चों के साथ जुड़कर काम करने के अनुभव बताते हैं कि वास्तव में बच्चों में सृजनशीलता महज थोड़ी-सी स्वतंत्रता से इस तरह खिल जाती है कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते। घोर निराशा भरे माहौल में भी बच्चे इस तरह से सृजनशील हो सकते हैं कि वे अपनी भावनाओं को इतनी शिद्दत से बयान कर सकें कि हमें सोचने पर मजबूर कर देते हैं।

इंसान का स्वभाव है लगातार सोचते रहना एवं नई-नई कल्पनाओं में खो जाना। कल्पना व विचार की यही तीव्र उत्तेजना उससे कुछ न कुछ अवश्य करवाने के लिए प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कुछ सृजन की ओर प्रेरित होता है। यानी वह कुछ रचने की ओर अग्रसर होता है या कहें कि तैयार होता है। यहीं से निर्माण की प्रक्रिया का जन्म होता है। कला की निर्मिति के लिए माध्यम का होना जरूरी है अन्यथा कला जन्म ही नहीं ले सकती। और एक कलाकार चूंकि चीजों को कलात्मक ढंग से देखने/करने की क्षमता रखता है और ऐसी कल्पना कर सकता है। अब ये बात अलहदा है कि जो अधिक कल्पनाशील होता है वह अधिक बड़ा कलाकार कहलाता है। कल्पना को साकार रूप देने के लिए रंगों, पत्थरों, लकड़ियों, धातुओं...आदि तमाम चीजों का इस्तेमाल करता है; तब कला का जन्म होता है। जिसने जितने सूक्ष्म व बारीक अवलोकन से गहन रूप में अपनी कल्पना को साकार करने के प्रयत्न किए वह उतना ही महान कलाकार बन गया। यही बात बच्चों पर भी लागू होती है।

दुनिया के मशहूर चित्रकार पाब्लो पिकासो ने यहां तक कहा था कि ''अगर आपको कला की रचना करनी है तो दुनिया छोड़ दीजिए। जितनी देर कला की दुनिया में रहें उतनी देर दुनिया से मुक्त हो जाइए।'' तभी आप बेहतर कला की रचना कर सकते हैं। बच्चों के लिए तो चित्रकला की दुनिया और भी कमाल की है। अगर आप उनके सामने कागज और रंग बिखेर दें तो उनके लिए यह दुनिया स्वतंत्र आकाश में उड़ान भरने जैसी है, जहां किसी तरह की कोई बाध्यता या अनिवार्यता न हो। जब बच्चे स्वतंत्र रूप से अपनी कल्पना को मूर्त रूप देने लगते हैं तो यकीन मानिए कि वे ऐसा कुछ जरूर बनाएंगे जिससे हम आश्चर्यचकित रह जाएंगे। क्योंकि वे अपनी सोच और दुनिया को देखने के तरह-तरह के प्रतिबिंब अपनी कल्पना के जरिए रचते हैं, जो हम बड़े नहीं रच पाते। क्योंकि हम किसी न किसी सीमा या सांचे में बंधे हुए होते हैं जबकि बच्चों के साथ ऐसा नहीं है। वे दुनिया को जिस रूप में देखते हैं उसी रूप में

उनके दिमाग में छवि बनेगी ऐसा कतई जरूरी नहीं है। क्योंकि चीजों को देखना एक बात है और उसे अभिव्यक्त करना दूसरी। जब वे कोई चित्र के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं तो ये नहीं सोचते कि वे क्या व क्यों कर रहे हैं। या वह जैसा देखा गया वैसा ही बन पा रहा है या नहीं, वे इसकी चिंता कतई नहीं करते। क्योंकि उन्हें किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी। उनमें अपने आपको किसी से बड़ा साबित करने का भाव नहीं होता। उनका निश्छल स्वभाव तो बस वह सब करना चाहता है जिसे वे करना चाहते हैं और अगर इसके लिए वे किसी तरह का कोई अवसर हासिल कर पाते हैं तो वे खुद को बेहतर से बेहतर बनाने की प्रक्रिया में जुट जाते हैं। बच्चे लगातार सोचते रहते हैं कि वे खुद को और अच्छा साबित करते रहें। वे अपने काम से पूरी तरह संतुष्ट नहीं होते। इसका मतलब है कि जैसा कर पा रहे हैं उससे और अच्छा करने की इच्छा ही उन्हें एक अलग तरह के रचनात्मक व सौंदर्यबोध के एहसास से भर देती है। जो किया उसे भूलकर पुनः कुछ नया करने की प्रक्रिया में जुट जाते हैं।

इसलिए लगातार उनके साथ कुछ न कुछ नया करवाते रहने की जरूरत है। वे तमाम गतिविधियों में अपने को आजमाकर देखना चाहते हैं कि मैं क्या-क्या कर सकता हूं। वे किसी तयशुदा नियम के तहत कोई भी क्रियाकलाप करने के आदि नहीं होते। वे चीजों को उस तरह नहीं देखते जिस तरह हम बड़ों का दुनिया को देखने का नजरिया होता है। बल्कि किसी भी तरह की नियमबद्धता उनके लिए उनके रचनात्मक काम के लिए बाधा की तरह ही पेश आती है।

एकलव्य पुस्तकालय के एक दूसरे अनुभव पर नजर डालें तो यहां आने वाले बालक-बालिकाओं, में विशेषकर उनमें जो नियमित रूप से पुस्तकालय का इस्तेमाल करते आए हैं, कुछ इसी तरह का अनुभव रहा है। इन बच्चों में एक विशेष तरह का रुझान कला के प्रति दिखाई देता है। यह शायद इस वजह से भी है कि ऐसा माहौल उन्हें अपने स्कूलों में बिलकुल ही नहीं मिलता। और अगर कभी-कभार ऐसा होता भी है तो वह महज औपचारिक खानापूर्ति बनकर रह जाता है। यहां उन्हें पूरी छूट है, अपनी मर्जी से काम करने की। वे जो भी और जैसा भी बनाएंगे उसे नकारा नहीं जाएगा। ऐसा बच्चों के अनुभव खुद बयां करते हैं। हमारी पूरी कोशिश रहती है कि उनकी भावनाओं व संवेदनाओं की पूरी कद्र की जाए। उसे सराहा जाए। प्रोत्साहित किया जाए। तरह-तरह के रंगों, चित्रों, चित्रकला की किताबों...आदि के अवलोकन के अवसर दिए जाएं। उन्हें अपने ही साथियों/मित्रों द्वारा बनाए गए चित्रों के अवलोकन के अवसर भी दिए जाने चाहिएं। बच्चे जब कोई चित्र बना रहे होते हैं तो वे सपनों की एक अलग ही दुनिया में खो जाते हैं। शायद इसलिए क्योंकि वे संवाद करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि कोई उनकी बात सुने, समझे और गाहे-बगाहे स्वीकार भी करे। वे हम बड़ों से प्रोत्साहन के दो शब्द सुनना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जो कुछ उन्होंने बनाया है उसका समर्थन किया जाए, उसे सराहा जाए और अगर हम सचमुच ऐसा करते हैं तो यकीन मानिए वे अपने अंदर एक अनूठी खुशी का अनुभव महसूस करते हैं। यह खुशी ही उन्हें अपने आपको और बेहतर साबित करने की ओर ले जाने के लिए प्रोत्साहित करती है एवं नया रचने की जिज्ञासा उत्पन्न करती है। चूंकि वे नया तभी कर पाएंगे जब बड़े उनकी हौसला अफजाई करेंगे। अन्यथा वे निराशा के अंधेरे में फिर उसी उबाऊ दुनिया का हिस्सा बन जाते हैं। जहां उनके लिए कुछ भी अपनी मर्जी से रचनात्मक करने की सख्त व बेजा हद तक मनाही है।

मैंने अनुभव किया है कि जब वे पुस्तकालय में बैठकर चित्र बना रहे होते हैं तो वे अपनी ही दुनिया में खो जाते हैं। शायद इसलिए क्योंकि वे अपने आपको अभिव्यक्त करना चाह रहे होते हैं। वे आपसे संवाद करना चाह रहे होते हैं। ऐसे में अगर उन्हें उचित अवसर और मंच मिले तो वे खुलकर अपनी अभिव्यक्ति देते हैं। यही सब वे चित्र बनाते समय करते हैं। हो सकता है वे आपसे बात करते समय शर्मा रहे हों, झिझक रहे हों या हो सकता है कि उन्हें यह संकोच हो रहा हो कि क्या पता कोई डांट ही दे...। इसलिए जब उनके हाथ में रंग होते हैं तो वे सहज ही अपनी कल्पनाओं को पर देने के लिए जुट जाते हैं कुछ न कुछ बनाने में।

इसमें कई तरह के चित्र होते हैं। जो बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं उनके चित्रों में यह देखा गया है कि वे आमतौर पर अपने आसपास के अनुभव को चित्रों में दर्शाने की कोशिश करते हैं लेकिन जो बच्चे प्राइवेट विद्यालयों से आते हैं; उनमें थोड़ा फर्क इस अर्थ में होता है कि वे ज्यादातर वैसा ही कुछ बनाते हैं, जो स्कूलों की ड्राइंग पुस्तिका में उन्हें करवाया जाता है। इससे हटकर कुछ नया वे कम ही कर पाते हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा कि पुस्तकालय में नियमित रूप से आने वाले बच्चों में स्कूलों की ड्राइंग पुस्तिका में करवाई जाने वाली चित्रकारी के अलावा दूसरे तरह का रुझान भी पनपने लगता है। क्योंकि वे यह नहीं समझ पाते कि चित्र बनाना दरअसल अपने जीवंत संदर्भ और अनुभव को चित्रित करने देने से है। वह कैसा होगा यह अलग मसला है लेकिन वे ऐसा काफी कोशिश के बाद कर पाते हैं। और तब वे अपनी मर्जी से चित्र बनाने की पूरी छूट हासिल कर पाते हैं। साथ ही इससे वे ये भी समझ पाते हैं कि इसमें अच्छी खासी मेहनत की भी दरकार है; तभी यह अधिक उम्दा, ठोस और बेहतर बन पाएगा। सबसे अहम तो ये कि वे यह समझने लगते हैं कि वास्तव में सतत् अभ्यास का क्या मतलब है और वे इसे पूरी तरह से और भरपूर आनंद के साथ अनुभव करते

हैं। देखने में ये भी आया है कि जिस गतिविधि में उनकी रुचि है उसे पूरा करने या सीखने के लिए वे समय को ज्यादा तवज्जो नहीं देते। क्योंकि यहां ऐसे शिक्षण की चर्चा हो रही है जिसमें उनका मन अनौपचारिक रूप से सहज ढंग से उस गतिविधि विशेष में रमने लगता है जिससे कि उसे आनंदानुभूति होती है। स्वभाविक भी है बच्चे ही क्यों हम बड़े भी अपनी पसंद के काम को करने में करते-करते मशगूल हो जाते हैं तो फिर यहां तो ये बच्चे हैं। हो सकता है उन्हें या औरों को ये लग सकता है कि बच्चा इसमें समय जाया कर रहा है लेकिन ये बात भी हमें समझनी होगी कि इस सहज व स्वभाविक तरीके के अनौपचारिक शिक्षण के जरिए, जिसे हम वक्त जाया करना कहते हैं; दरअसल बच्चे अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से सीख रहे होते हैं। जिसका अंदाजा उन्हें भी नहीं होता। शायद बच्चों को भी एकबारगी लग सकता है कि वे तो महज समय पास कर रहे हैं पर असल में वे इन सबसे बहुत कुछ ठोस रूप में सीख ही रहे होते हैं। और ये सीखना ऐसा सीखना है जिसे वे ताउम्र नहीं भूल सकते। यही बात स्कूली शिक्षण की प्रक्रिया पर भी लागू होती है। पर शायद हमारे पास इतना वक्त नहीं है कि हम थोड़ा-सा इस पर विमर्श कर सकें कि क्या वास्तव में ऐसा स्कूली व्यवस्था के ढांचे के भीतर भी संभव बनाया जा सकता है।

लेकिन हमारे पास वक्त ही नहीं होता उनकी अभिव्यक्ति को मंच देने के लिए। जहां कहीं भी थोड़ी गुंजाइश कुछ करने/रचने की उन्हें मिलती है, वहां भी उनसे वही सब गतिविधियां करवाई जाती हैं जिनमें खुद बच्चों की रुचि कम ही हुआ करती है। यह बेरुखी और रुचिविहीन दुनिया बच्चों की सहज जिज्ञासा व कल्पनाशक्ति का इस तरह से विनाश करती है कि वे हम बड़ों की बनाई हुई बेजान भौतिक दुनिया में वैसा ही बनने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इसलिए कई बार लगता है कि क्यों हम उन्हें अपने हाल पर नहीं छोड़ते हैं। इसकी क्या गारंटी है कि वे अपनी मर्जी से खेलने लगेंगे तो बिगड़ जाएंगे और समाज के बने बनाए तयशुदा ढांचों/नियम कायदों में रहकर बहुत सुधर जाएंगे। यह महज हमारा भ्रम है। हमारे भीतर का डर है। एक तरह का असुरक्षा भाव है जो हमें उन्हें ऐसा करने से क्रूरता की हद तक जाकर न करने के लिए रोकता है। क्या हम अपनी क्रूरता को थोड़ा-सा कम करते हुए उनके साथ नरमी से पेश नहीं आ सकते ? और क्या उनकी बात सुन समझ लेंगे तो कोई बड़ा अनर्थ हो जाएगा ? क्या हम उनकी अपनी पहचान, पसंद-नापसंद, रुचि, मर्जी से क्रियाकलाप करने की इच्छा, उनकी संवेदनशीलता का तनिक भी ख्याल नहीं रख सकते ? स्वतंत्रता बच्चों की जिंदगी में सबसे अहम और महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, इस पर हमें गंभीरता से सोचना पड़ेगा।

दरअसल, कला को जीवन की सजावट की वस्तु मानने की प्रवृत्ति हमारी रही है, उसे कभी केन्द्रीय वस्तु नहीं समझा गया। कला इंद्रियों के स्वस्थ अनुशासन के लिए जब तक नहीं होगी समाज को बेहतर बनाने की उम्मीद नहीं की जा सकती। कला दरअसल मानवतावादी होती है। वर्तमान में कला का तेजी से ह्रास हो रहा है। यह अच्छी स्थिति नहीं है। इसीलिए आज फिर से कला को आम आदमी से जोड़ने के लिए उसे वहां तक पहुंचाने की जरूरत है। यह तभी संभव है जब इसे आंदोलन की तर्ज पर तथा स्कूल-कॉलेजों में नियमित तौर पर कला को पाठ्यक्रम का जरूरी हिस्सा बनाया जाएगा। ऐसा संभव करने के लिए जैसे कलाकारों को इसका दायित्व उठाना होगा। जिसकी शुरुआत जितनी जल्दी हो सके कर देनी चाहिए। कला मनुष्य के भीतर ऐसा स्थायी सौंदर्यबोध जगाती है जिससे मनुष्य खुद को बेहतर बनाने की ओर रचनात्मक कोशिशों में लग जाता है। तब वह विध्वंस के बजाय निर्माण की तरफ अधिक आकर्षित होता है। अपने आपको चाहना अपने से यानी खुद से प्यार कर पाने की जिज्ञासा का भाव ही मनुष्य को सृजनात्मक क्रियाकलाप करने के लिए प्रेरित करता है। उसे सृजनशील बनाता है। निर्माण का विचार या हर वक्त कुछ नया व कलात्मक सोच रख पाने की कोशिश ही दुनिया को सौंदर्यपरक और खूबसूरत बनाने की ओर ले जाती है। तभी तो हम एक नई व कलात्मक दुनिया रच पाएंगे। अन्यथा हमारे पास क्या शेष बचेगा अगर कला नहीं होगी तो ? ◆